A Pratibha Spandan Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

मध्य प्रदेश की वादन परम्परा में घरानों का योगदान: ताल व तंत्री वाद्यों के संदर्भ में

SOMESH TIWARI
Researcher, Music Department, Banasthali Vidyapith, Tonk, Rajasthan, Add-Chirgaon, Jhansi, UP

Read the Article Online

OPEN ACCESS

Cite this Article

Published on 21 June, 2026

Tiwari, S. (2026). madhya pradesh ki vadan parampara mein gharanon ka yogdaan: taal va tantri vadyon ke sandarbh mein. Swar Sindhu, 14(1), 444-447.

सार

सं. रत्नाकर में लिखा है नृत्यं वाधानुगं प्रोक्तं वाद्यं गीतानुवर्ती च (अ 1,प्र 1,श्लोक 24)[1]
जिसमें में ग्वालियर के सेनिया वंगश, इंदौर के सेनिया, मैहर सेनिया तथा नाना पानसे (इंदौर), कुदऊ सिंह (दतिया) इन पांच के घरानों के योगदान के विषय में अपना लेख प्रस्तुत है। गुरु शिष्य परंपरा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है, इसी परंपरा का आश्रय लेते हुए इन संगीतकारों ने भी अपने संगीत की विशेषताओं को अपने पुत्रों और शिष्यों के माध्यम से प्रवाहित किया। घराना शब्द से परंपरागत रीति-रिवाजों, गायकी या वादन शैली के कुछ विशेष तौर-तरीके, अनुशासन एवं क्रम आदि का बोध होता है। गायन, वादन व नृत्य कलाओं में परंपरागत कलात्मक शुद्धता व स्वरूप के विकास के प्रयत्न किए जाने के फलस्वरूप ही संगीत के विभिन्न घराने मध्यकालीन सामाजिक परिस्थितियों के कारण विकसित होते चले गए। संगीत रत्नाकर - शारंगदेव अनुसार वर्णन किया गया है - तस्य गीतस्य माहात्म्यं का प्रशंसि तुमाशते। धमार्थ काम मोक्षाणा मिदमेवेक साधनम् ॥[2]
अर्थात:- संगीत को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने का सुलभ वर्णित किया है भारतीय दर्शन अनुसार-
पूजात कोटिगुणं स्त्रोत स्तोत्रात्कोटि गुणो जपा। जपात्कोटि गुणं गानं गानात्परतंर नहि॥[3]
अर्थात:- पूजा से स्तोत्र, स्तोत्र से जप, जप से गान करोड़ों गुना श्रेष्ठ है। अतः गायन श्रेष्ठ उपासना का कोई अन्य साधन नहीं है।
***मुख्य बिंदु**: घराना, वादन शैली, गुरु शिष्य परम्परा, प्रसिद्धि व प्रचलन, तंत्री व ताल वाद्य*

भारतीय संगीत में मध्य प्रदेश के स्वर वादन के कुछ प्रमुख घराने

मैहर घराना (सेनिया): उस्ताद अलाउद्दीन खान द्वारा स्थापित यह घराना, मैहर (सतना जिला) में शुरू हुआ। यह वाद्य संगीत, विशेषकर सरोद वादन के लिए प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध कलाकार उस्ताद अली अकबर खान और अन्नपूर्णा देवी इसी घराने से हैं। पंडित हरिप्रसाद चौरसिया जी को कौन नहीं जानता जिन्होंने भारतीय शास्त्रीय संगीत में बांसुरी को स्थापित कर जन-जन तक पहुंचाने का कार्य किया है

मैहर घराना के बारे में बात करने से पहले , बाबा अलाउद्दीन खान साहब के बारे में कुछ बातें जानना बेहतर होगा। उन्होंने अपने पूरे जीवन में कई संगीतकारों से सीखा। उस समय रामपुर संगीतकारों का एक बड़ा केंद्र था। रामपुर में लगभग कुछ सौ संगीतकार मौजूद थे। इसलिए बाबा उन्हें सुनते और उनसे सीखते थे।इस प्रकार उन्होंने वज़ीर खान साहब से बीनकार घराना की तालीम लेने के बाद और वहाँ के संगीतकारों के साथ अपने जुड़ाव से, उन्होंने सब कुछ आत्मसात कर लिया और अपनी एक अनूठी शैली बनाई, जो बीनकार घराना की ध्रुपद शैली के आलाप और जोड़ से समृद्ध थी। उसी समय विलंबित गत, विस्तार और तान आदि में ख्याल शैली थी। अति विलंबित, मध्य विलंबित, मध्य द्रुत और अति द्रुत सहित सभी लयों में उन्होंने धीरे-धीरे प्रगति की और धीमी आलाप से शुरू होकर अति द्रुत गत झाला तक अपनी एक अलग शैली विकसित करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त, उन्हें लोक धुनों का बहुत शौक था, जिनमें एक मधुरता होती है।[4]

बाबा कई संगीतकारों और ख्याल सौंदर्यशास्त्र से प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने पहले विलंबित ताल में वादन शुरू किया और उसे उस समय प्रचलित न होने वाली विलंबित ताल के अनुरूप ढाला। इसके अलावा, द्रुत रजाखफली गतों में, बाबा के बाद पंडित रविशंकर, उस्ताद. अली अकबर खान और अन्य संगीतकारों ने इसी शैली में वादन किया।बाबा न केवल गायक और वादक थे, बल्कि ढोल भी बजाना जानते थे। वे एक कुशल पखावज और तबला वादक थे। वे बंगाल का लोक वाद्य, ढोल भी बजाते थे। इसका प्रभाव उनकी शैली और रचनाओं पर भी पड़ा।

जब पंडित रवि शंकर, उस्ताद अली अकबर और अन्नापूर्णा जी बाबा जी से एक साथ सीखते थे, तब बाबा जी मूल रूप से सरोद वादक थे, लेकिन उन्हें सितार वादन की कई तकनीकी बारीकियां पता थीं। जब वे सरोद से सिखाते थे, तो सरोद का स्केल काफी नीचा होता था।अली अकबर जी सरोद बजाते थे, अन्नापूर्णा जी सुरबहार बजाती थीं और पंडित रवि शंकर कभी सुरबहार तो कभी सितार बजाते थे। पंडित रवि शंकर सितार को

काफी नीची पिच पर बजाते थे, लगभग बी फ्लैट पर। स्वाभाविक रूप से ध्वनि बहुत मधुर होती थी। लेकिन अंततः उन्होंने सितार बदल दिया। बाबा जी द्वारा सिखाई गई विभिन्नताओं को आत्मसात करने के लिए पंडित रवि शंकर ने भी कुछ संशोधन किए।

ग्वालियर वंशज (सेनिया) उस्ताद हाफ़िज अली ख़ां ग्वालियर के शाही दरबार के संगीतकार थे। ग्वालियर में उनका पैतृक घर आज भी एक संगीत संग्रहालय (सरोद घर) के रूप में जाना जाता है। उस्ताद अमजद अली ख़ां ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया और सरोद वादन में नवीन तकनीकी और रागों का सृजन किया, जैसे राग प्रियदर्शनी, राग कमलश्री आदि।[5]

इंदौर घराने की परंपरा (सेनिया) 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शुरू हुई थी। इस घराने के सितार वादन के प्रचारकों की सूची में उस्ताद वाहिद खान, उनके समकालीन संगीतकार उस्ताद बंदे अली खान साहब, उस्ताद हलीम जाफर खान साहब के दादा मुरावत खान साहब आदि महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं, इंदौर घराने की यह विशेषता है कि इस घराने के अनुयायी केवल इंदौर, देवास, जावरा, जबलपुर (मध्य प्रदेश) जैसे स्थानों पर ही बस गए हैं, जबकि कई अन्य संगीतकार इन स्थानों पर कहीं और से आए थे और इंदौर घराने की परंपरा से प्रभावित थे।

उत्तर भारतीय हिंदुस्तानी संगीत में वादकों के घरानों में सेनिया घराने का महत्वपूर्ण स्थान है। सेनिया घराना विशेषत: सितार तथा सुरबहार के लिए प्रसिद्ध है। इस घराने के प्रतिपादक तानसेन के दामाद मिसरी सिंह माने जाते हैं।

सेनिया संगीतकार जैसे - मसीत खाँ, मुश्ताक अली खाँ, सुख सेन, बहादुर सेन, रहीम सेन, अमृत सेन, बरकतउल्ला खाँ, आशिक अली खाँ, देबू चौधरी इत्यादि के नाम इस घराने में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[6]

सेनिया घराने की शैली में बीन अंग और ध्रुपद अंग की शैलियाँ अपनाई गई थीं। राग में स्वरों की शुद्धता एवं बंदिशों में राग की स्वच्छता, गमक और मींड का प्रयोग सेनिया घराने की अनूठी पहचान है।

इंदौर घराना में सितार वादन की परंपरा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शुरू हुई। इस घराने के अनुयायियों की सूची - उस्ताद वाहिद खान, उनके समकालीन संगीतकार उस्ताद बंदे आल खान साहब, उस्ताद हलीम जाफर खान साहब के दादा मुर्रावत खान साहब, मुराद खान साहब (बीनकर) अब्दुल लतीफ खान (बीनकर), मोहम्मद खान देसाई फरीदी, उस्ताद रज्जब अली खान (गायक), बाबू खान साहब (बीनकर), मुशर्रफ खान (सितारिया), उस्मान खान (बीन), गुलाम रसूल (सितार), रहमत खान (सितारिया जो धारवाड़ में बस गए), जावरा के नजीर खान, मोहम्मद खान (बीनकर सितार) चोपतीवागे, जाफर खान अमानत खान (गायक), कृष्णराव रघुनाथ राव अष्टवाले, कृष्णराव कोलापुरे (पंढरीनाथ कोल्हापुरे के पिता), देवासकर भैया (गायक), सज्जाद हुसैन, उस्ताद अमीर खान आदि।

इन सभी संगीतकारों ने गायन और सितार वादन की कला को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया। उस्ताद अब्दुल हलीम जाफर खान साहब भी इसी परंपरा से आते हैं। इंदौर घराने की यह विशेषता है कि इसके अनुयायी केवल इंदौर, देवास, जवरा, जबलपुर (मध्य प्रदेश) जैसे स्थानों में ही बसे हैं,

जबकि कई अन्य संगीतकार अन्य स्थानों से आकर इंदौर घराने की परंपरा से प्रभावित हुए।

जाफरखानी बाज की अपनी एक अनूठी शैली है जो 16 मात्राओं की अवधि के दौरान गत विकास के लिए बारह विभिन्न तकनीकी घटकों का प्रभावी ढंग से उपयोग करती है। ऐसे घटकों को नियोजित करने की आवश्यकता इस तथ्य से उत्पन्न हुई कि मसितखानी गत में कुछ निश्चित बोलों के कारण कई रागों की सूक्ष्म बारीकियों को व्यक्त करना संभव नहीं हो पाता । किसी विशेष लय में निश्चित मिज़राब राग के सही रूप को प्रकट करने में असमर्थ होते हैं। इसलिए, राग के उचित प्रदर्शन की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, प्रत्येक मात्रा की अवधि के दौरान तर्जनी और मध्यमा उंगली का उपयोग करके मींड , मुर्की, जमजमा , उचट, खटका आदि अलंकरण बजाए जाते हैं । अतः, प्रत्येक मात्रा की अवधि को भरने के लिए इन घटकों को प्रभावी ढंग से विकसित करना ही कौशल है। इस प्रकार, बारह घटकों का उपयोग इस बाज की एक अनिवार्य विशेषता है।

भारतीय संगीत में मध्य प्रदेश के ताल वादन के कुछ प्रमुख घराने

नाना पानसे (पखावज) संगीत जगत में बाबू जोध सिंह के शिष्य नाना पानसे का नाम बडी आदर और श्रद्धा से लिया जाता है। पखावज-वादन में उन्हीं के नाम से एक घराना चल पड़ा है। जिससे उनकी विद्वता, साधना और मौलिकता का परिचय मिलता है उनके जैसा लयकार, मधुर वादक और ताल-गणित में निपुण उस समय कोई दूसरा पखावज वादक मध्य प्रदेश व महाराष्ट्र में नहीं था।

नाना पानसे को पखावज की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली। बचपन से ही वे मन्दिरों में भजन-कीर्तन की सुन्दर संगति किया करते थे।[7]

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
ISSN 2320–7175 (O) । Volume 14, Issue 01, January-June, 2026

सौभाग्य से एक बार उन्हें अपने पिता के साथ कीर्तन-भजन की संगति के लिये काशी जाना पड़ा। वहां वे बाबू जोध सिंह से मिलने उनके घर गये। उस समय बाबू जोध सिंह साधना रत थे।

उनका पखावज सुनकर वे आत्म विभोर हो गये और उनसे सीखने के लिये उनके चरण पकड़ लिये।

एक योग्य शिष्य पाकर बाबू जोध सिंह ने बारह वर्षों तक उनकी विधिवत शिक्षा दी और नाना पानसे ने बड़ी आदर-श्रद्धा के साथ संगीत विद्या ग्रहण की।

शिक्षा संपन्न के बाद नाना पानसे काशी से इन्दौर चले गये। इन्दौर नरेश ने आपको अपने दरबार में नियुक्त कर लिया।

वे आपके पखावज-वादन, विद्वता और सरल स्वभाव से बड़े प्रभावित थे और आपको हृदय से चाहते थे। एक बार तत्कालीन ग्वालियर नरेश जियाजी राव इन्दौर पधारे। उन्होंने जब नाना पानसे का वादन सुना तो बड़े प्रभावित हुये और उनको अधिक वेतन पर ग्वालियर दरबार में नियुक्त करने का प्रस्ताव किया। इन्दौर नरेश एक ओर नाना पानसे को छोड़ना नहीं चाहते थे तो दूसरी ओर अपने मित्र को नाराज नहीं करना चाहते थे,

इसलिये इसके निर्णय का भार इन्दौर नरेश ने नाना पानसे पर छोड़ दिया।

उन्होंने इन्दौर छोड़ने में अपनी असमर्थता प्रकट की और जीवन भर वहीं रहे।

नाना पानसे ने इन्दौर में रहकर अपनी कला को निखारा।

संगीत के आधुनिक और प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किया और गणित की दृष्टि से अपनी विद्या को सजाया-सवारा। अनेक तालों के नये ठेके बनाये और परन की नई-नई रचनायें कीं। वे स्वभाव के बड़े सरल, विनम्र और मृदुभाषी थे।

अपनी विद्या और साधना का उन्हें तनिक भी अभिमान नहीं था। प्रत्येक कलाकार की, चाहे छोटा हो या बडा वे प्रशंसा किया करते थे और कभी किसी का अपमान नहीं करते।

तत्कालीन संगीतज्ञों में आपका परम स्थान था। वे विद्या दान में बड़े उदार थे, इसलिये उन्होंने कई के ख्याति प्राप्त कलाकारों का निर्माण किया जैसे-

पं० सना राम बुआ आगले, बलवंत राव पानसे, शंकर भैया पानसे, शंकरराव अलकुटकर आदि

वे पखावज के साथ-साथ तबला तथा नृत्य में भी पारंगत थे। युवा पुत्र निधन से वे बड़े दुखी रहने लगे और उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में संगीत जगत की सेवा करते-करते स्वर्ग सिधार गये।

कुदऊ सिंह घराना(पखावज) कुदऊ सिंह का जन्म 1815 में उत्तर प्रदेश के बांदा में कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम गप्पे था। कुदऊ सिंह देवी के परम भक्त थे और पखावज बजाने के पूर्व देवी की आराधना अवश्य किया करते थे।[8]

कुदाऊ सिंह 19 वीं सदी के एक प्रसिद्ध पखावज वादक और कुदाऊ सिंह घराने के संस्थापक थे।

पखावज की शिक्षा मथुरा के प्रसिद्ध पखावज गुरु भवानी दीन से मिली, जिन्हें कहीं-कहीं भवानी सिंह या भवानी दास के नाम से भी जाना जाता है। सन् 1847 में, अवध के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह ने उनके पखावज वादन पर प्रसन्न होकर इन्हें 'सदा कुंवर' (कुंवर दास) की उपाधि प्रदान की थी। अपने समकालीन प्रसिद्ध पखावजी जोध सिंह को एक प्रतियोगिता में परास्त कर इन्होंने एक लाख रूपये का पुरस्कार जीता था। रीवा के राजा ने उनके एक परन पर प्रसन्न होकर, उन्हें पुरस्कार स्वरूप सवा लाख रूपया दिया था।[9]

कुदऊ सिंह को रीवा, रामपुर, झांसी, बांदा, कवर्धा और दतिया आदि के राजाओं का संरक्षण राजाओं का प्राप्त था। दतिया के राजा भवानी सिंह ने ही इन्हें 'सिंह' की उपाधि दी थी। कुदऊ सिंह ने गुरु द्वारा प्राप्त पखावज वादन की शिक्षा में, बहुत कुछ अपनी ओर से जोड़कर अपनी एक नवीन शैली विकसित की और स्वयं को मृदंग सम्राट के रूप में स्थापित किया। इनकी वादन शैली ओजपूर्ण और गंभीर थी, जिसमें हथेली का प्रयोग अधिक होता है। ज़ोरदार, क्लिष्ट और एक-दूसरे से गुँथे हुए वर्णों से निर्मित लंबी-लंबी परन इस परंपरा में प्रचलित हैं। साहित्य की दृष्टि से भी ये परनें उच्चकोटि की होती हैं। धड़गण, धइन्न, तइन्न, धिलांग, धुमकिटतक, क्रिधित, तक्काभुंग जैसे बोलों का इस परंपरा में अधिक प्रयोग होता है। कुदऊ सिंह परंपरा का बाज खुला बाज है और इसका प्रचार-प्रसार लगभग समस्त भारत में है।

कुदऊ सिंह अनेक अविश्वसनीय जनश्रुतियों के केंद्र थे। इनके वंशज अपना उपनाम शर्मा लिखते हैं। कहते हैं कि अपनी पुत्री के विवाह में दामाद काशी प्रसाद को चौदह सौ परन इन्होंने उपहार स्वरूप दिए थे, जिन्हें पुत्री धन समझकर फिर कभी नहीं बजाया। कुदऊ सिंह ने समस्त भारत के सैकड़ों लोगों को पखावज वादन की शिक्षा दी। इनके प्रमुख शिष्यों में, इनके छोटे भाई राम सिंह, भतीजे जानकी प्रसाद और दामाद काशी प्रसाद का नाम आदर से लिया जाता है। जानकी प्रसाद के पुत्र गया प्रसाद और पौत्र पद्मश्री पंडित अयोध्या प्रसाद श्रेष्ठ पखावजी हुए। पंडित अयोध्या प्रसाद के सबसे छोटे पुत्र पंडित रामजी लाल शर्मा वर्तमान में इस परंपरा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

ऐतिहासिक वृत्तांत के अनुसार, उन्हें अपनी अद्भुत संगीत रचना और अपने संगीत वादन से पागल हाथी को नियंत्रित करने जैसे अद्भुत प्रदर्शन के लिए जाना जाता था। उन्हें एक दिव्य प्रतिभा के लिए जाना जाता था, जिसे देवी काली का आशीर्वाद माना जाता है।[10]

निष्कर्ष

18 वीं शताब्दी में घराने एक प्रकार से औपचारिक संगीत-शिक्षा के केन्द्र थे परन्तु ब्रिटिश शासनकाल का आविर्भाव होने पर घरानों की रूपरेखा कुछ शिथिल होने लगी क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति के व्यवस्थापक कला की अपेक्षा वैज्ञानिक प्रगति को अधिक मान्यता देते थे और आध्यात्म की अपेक्षा इस संस्कृति में भौतिकवाद प्रबल था।

भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत कला को जो पवित्रता एवं आस्था का स्थान प्राप्त था तथा जिसे कुछ मुसलमान शासकों ने भी प्रश्रय दिया और संगीत को मनोरंजन का उपकरण मानते हुए भी इसके साधना पक्ष को विस्मृत न करते हुए संगीतज्ञों तथा शास्त्रकारों को राज्य अथवा रियासतों की ओर से सहायता दे कर संगीत के विकासात्मक पक्ष को विस्मृत नहीं किया। परन्तु ब्रिटिश राज्य के व्यस्थापकों ने संगीत कला के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण अपना कर उसे यद्यपि व्यक्तित्व के विकास का अंग माना परन्तु यह दृष्टिकोण आध्यात्मिकता के धरातल पर स्थित न था। उन्होंने अन्य विषयों के समान ही एक विषय के रूप में ही इसे स्वीकार किया, परन्तु वैज्ञानिक प्रगति की प्रभावशीलता के कारण यह विषय अन्य पाठ्य विषयों के बीच लगभग उपेक्षित ही रहा।मध्य प्रदेश ही नहीं अपितु भारत देश के संगीत की जब भी चर्चा होगी, जिसमें ग्वालियर का नाम सर्वोपरि लिया जाता है, चाहे वह संगीत के शहर के नाम से, गायन के प्रथम घराना के नाम से या राजा मानसिंह तोमर के नाम से आदि कई कारण है इस प्रसिद्ध के, और क्यों न हो क्योंकि यहाँ की संगीत परंपरा मध्यकाल से अब तक संचालित है जिसमें हद्दू-हस्सू खां, बालकृष्णबुआ, पलुस्कर जी,शंकर राव पंडित जी आदि काई महान कलाकारों हुए है । इसीलिए इसे ख्याल गायकी की "गंगोत्री" कहा जाता है।

सन्दर्भ

1. परांजपे, शरच्चंद्र श्रीधर. (2006). _भारतीय संगीत का इतिहास_ (पृ. 250-278). चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.
2. शर्मा, प्रेमलता. (2005). _भारतीय संगीत का इतिहास_ (पृ. 312-340). भारतीय ज्ञानपीठ.
3. पाठक, जगदीश नारायण. (1992). _मैहर घराना और उस्ताद अलाउद्दीन खाँ_ (पृ. 22-58). मध्य प्रदेश कला परिषद्.
4. पाण्डेय, सुमति मुटाटकर. (2016). _ध्रुपद और उसका विकास_ (पृ. 134-158). राजकमल प्रकाशन. [ग्वालियर घराना, ध्रुपद]
5. कासलीवाल, सुनीता. (2008). _सितार और उसके घराने_ (पृ. 90-115). राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी. [मैहर घराना, सेनिया घराना]
6. गर्ग, ल. ना. (1998). _हमारे संगीत रत्न_ (पृ. 201-230). संगीत कार्यालय, हाथरस.
7. शर्मा, भगवतशरण. (1999). _ताल मार्तण्ड_ (पृ. 102-138). संगीत कार्यालय, हाथरस.
8. चौबे, एस. के. (2001). _मध्य प्रदेश की संगीत परम्परा_ (पृ. 78-112). मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
9. श्रीवास्तव, गिरीश चंद्र. (2003). _तबला वादन: कला और शास्त्र_ (पृ. 45-72). संगीत सदन प्रकाशन. [दिल्ली, अजराड़ा, बनारस घराना]